आचार्य श्री विद्यासागर जी की चेतन कृति

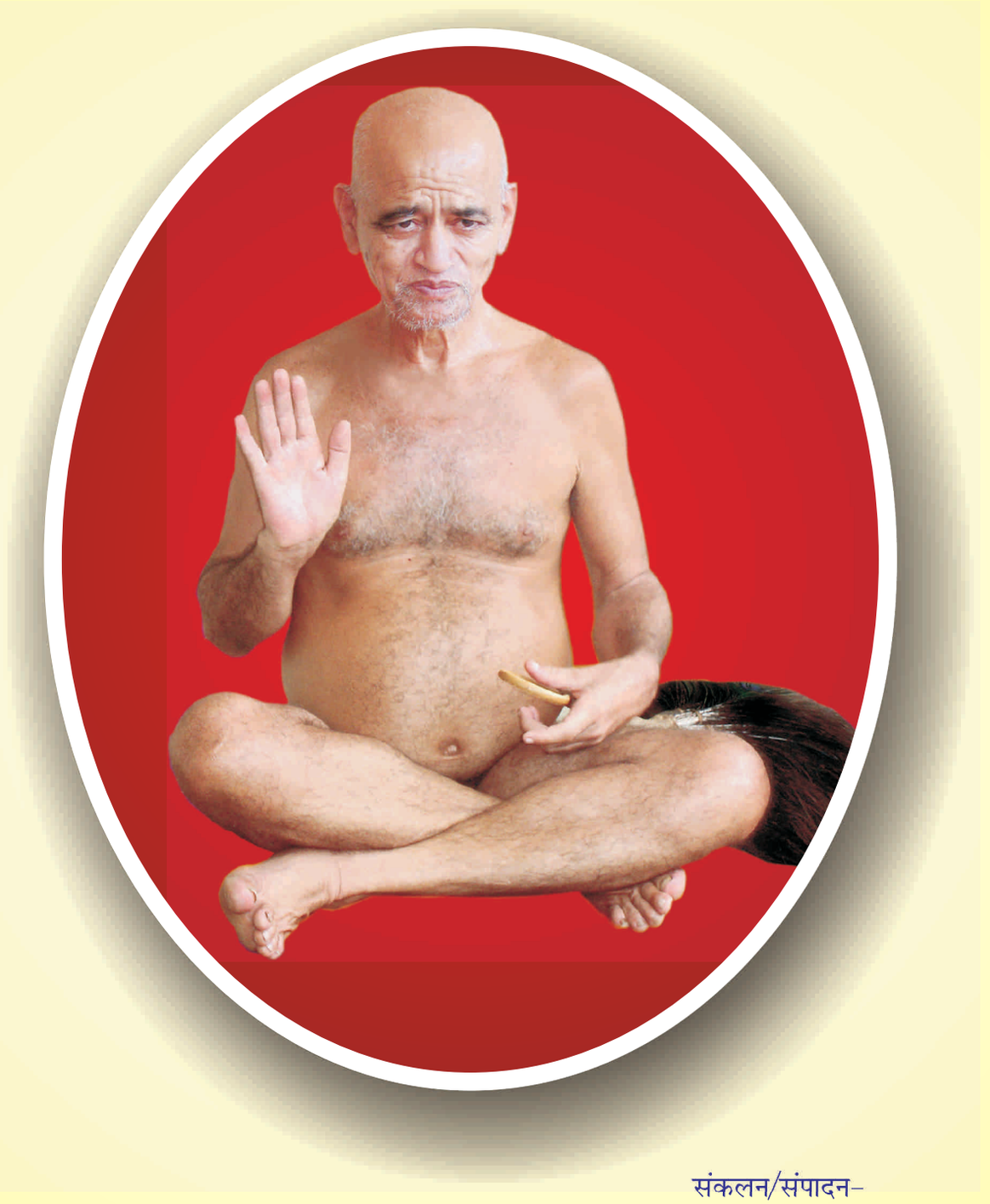

संकलन/संपादन–
मुनि अजितसागर जी महाराज

प्रकाशक - प्रकाश शोध संस्थान, नई दिल्ली

कृति	–	**आचार्य श्री विद्यासागर जी की चेतन कृति**
संकलन/संपादन	–	**मुनि अजितसागर जी महाराज**
प्रसंग	–	परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के 50वें स्वर्णिम् संयमोत्सव मुनि दीक्षा स्वर्णिम संयमोत्सव वर्ष : 2017-18 के पावन अवसर पर प्रकाशित
संख्या	–	1000 प्रतियाँ
द्रव्य पुण्यार्जक	–	श्रीमती सुनीता जैन धर्मपत्नि श्री विजय कुमार जैन 'वट्टी सेठ' विजय फाउण्ड्री परिवार, खुरई, जिला-सागर (म.प्र.)
प्रकाशक	–	प्रकाश शोध संस्थान नई दिल्ली
आई.एस.बी.एन.	–	81-87057-64-5
ग्राफिक्स / डिजायन	–	विपुल जैन, विदिशा मोबा.: - 9827256243
मुद्रक	–	भारिल्ल स्क्रीन प्रिंटर्स, विदिशा मोबा.: - 7000335818

चेतन कृतियों के रचनाकार - आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

जिनशासन की निर्बाध परम्परा हमारे तीर्थंकर भगवंतों से प्रवाहित होती आई है, उसी तीर्थ परम्परा को अन्तिम तीर्थंकर भगवान श्री महावीर स्वामी ने अपने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूपी पंचशील के सिद्धांतों के माध्यम से सिंचित किया है एवं श्रमण और श्रावक की परम्परा के सिद्धांत को अपनी दिव्य-ध्वनि के माध्यम् से बतलाया। यह धारा निर्बाध रूप से बहती हुई केवली भगवंतों के माध्यम् से आगे बढ़ी, फिर श्रुत केवली, अंगधर आचार्यों के माध्यम से आज तक वह जिनशासन की निर्बाध परम्परा चली आ रही है। श्रमण परम्परा को आचार्य श्री कुन्दकुन्द महाराज ने अपने मूलाचार, समयसार, प्रवचनसार, अष्ट पाहुड़ आदि ग्रन्थों के माध्यम से बतलाया है। 20वीं शताब्दी में आचार्य श्री कुन्दकुन्द महाराज की चर्या को आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज ने अपन कठोर साधना, चर्या के माध्यम् से नई दिशा प्रदान की। इसके बाद आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज, फिर आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज ने उस परम्परा को आगे बढ़ाया, इसके बाद इस परम्परा की धाराओं में वर्गीकरण हुआ और श्रमण परम्परा को और सुदृढ़ बनाया। आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से दीक्षित प्रथम मुनि साहित्य मनीषी, संस्कृत, प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान, जयोदय, वीरोदय आदि संस्कृत भाषा महाकाव्य के सृजेता महाकवि, प्रशान्तमूर्ति और जिन्हें लोग ज्ञानमूर्ति भी कहते थे ऐसे आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज हुये।

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज एक ऐसे आचार्य थे जो विद्वत् वर्ग के आदर्श के रूप में माने जाते थे। बिरले विद्वान ही श्रमण बनकर अपना आत्म कल्याण कर पाते हैं। ऐसे आचार्य श्री ने अनेक शिष्य तो नहीं बनाये, पर उन्हें एक ऐसा कोहिनूर हीरे की तरह एक ऐसा संयम रत्नत्रय का भण्डार, महान तपस्वी, ज्ञान ध्यान में लीन रहने वाला, ज्ञान पिपासु बनकर आया दक्षिण भारत कर्नाटक, जिला-बेलगाँव के सदलगा ग्राम में जन्मा एक युवा मिला, जिसे शिक्षित किया, संस्कारित किया, हर तरह से परखा और फिर उसे संयम दान देकर 30 जून 1968, आषाढ़ शुक्ल पंचमी के दिन दीक्षित भी किया। उस बालक का नाम था विद्याधर जी अष्टगे, दीक्षित करके उसे मुनि श्री विद्यासागर बना दिया।

परम पूज्य आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने देखा-पहचाना होगा कि एक दिन यह जिनशासन की शान बनेगा, जिनशासन का नायक बनकर जैन समाज का प्रमुख आचार्य बनकर जन-जन के कल्याण का कारण बनेगा। इसी भावना के साथ उन्होंने अपना आचार्य पद मुनि श्री विद्यासागर जी को देकर और अपना निर्यापकाचार बनाकर सल्लेखना धारण की और क्रमशः साधना करके समाधिमरण किया। आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज के सपनों को साकार करते हुये पूज्य आचार्य श्री ने राजस्थान को छोड़कर मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड की ओर आये और सन् 1975, फिरोजाबाद (उ.प्र.) के चातुर्मास के बाद सिद्धक्षेत्र सोनागिरी जी, जिला-दतिया (म.प्र.) से प्रवेश किया और सर्वप्रथम दीक्षायें देने का कार्य इसी मध्यप्रदेश के सिद्धक्षेत्र पर 18 दिसम्बर 1975, गुरुवार के दिन 4 क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की। इसके बाद बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया। पन्ना, सतना, कटनी होते हुये सन् 1976 का प्रथम चातुर्मास श्रीधर केवली भगवान की निर्वाण की भूमि एवं अतिशयकारी बड़े बाबा श्री आदिनाथ भगवान की पावन भूमि सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर जी में किया। इस पावन क्षेत्र को आचार्य श्री ने अपनी साधना स्थली बनाया औश्र अपने स्वाध्याय, ध्यान एवं प्रवचन के माध्यम से बुन्देलखण्ड की यह भूमि जहाँ पर संयम की साधना करने वाले नहीं मिलते थे, संयम के क्षेत्र में बंजर भूमि थी, पर आचार्य श्री चातुर्मास किए। आस-पास के ग्राम, नगर, शहर में विहार किया और अपने चिन्तन, ज्ञान, ध्यान, प्रवचन के माध्यम् से इस भूमि को ऐसा सिंचित किया कि आज सबसे अधिक उर्वरा, उपजाऊ भूमि संयमीजनों की बुन्देलखण्ड बन गया है। आज सबसे अधिक मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक और देशव्रती श्रावक-श्राविकायें नगर-नगर में हैं। आज उत्तर भारत में सबसे अधिक मुनि, आर्यिका आदि साधकगण हैं, तो वह सिर्फ आचार्य श्री का ही प्रभाव है, उनकी साधना का ही फल है।

दीनता विनय नहीं है, वह तो मात्र जीवन का निर्वाह है।

आज इस प्रचमकाल की भोग प्रधान संस्कृति में जन-मानस के उपयोग में चतुर्थ कालीन मुनि की चर्या को दिखाकर और अपनी साधना के माध्यम से जैन समाज को जैन मुनियों का स्वरूप क्या होता है? उनकी चर्या कैसी होती है? सभी आचरित करके दिखाया, जिसका परिणाम यह हुआ कि संयम के प्रति सोई हुई सुप्त चेतन जागृत हुई और संयम लेने के लिए जैन समाज के युवागण तैयार हुये।

आचार्य श्री ने अब तक 120 मुनि, 172 आर्यिकायें, 20 ऐलक, 14 क्षुल्लक, 3 क्षुल्लिका दीक्षायें प्रदान की हैं। इसमें 14 बार मुनि दीक्षा, 13 बार आर्यिका दीक्षा, 21 बार ऐलक दीक्षा, 16 बार क्षुल्लक दीक्षा एवं 3 बार क्षुल्लिका दीक्षायें प्रदान की हैं। प्रस्तुत कृति "**आचार्य श्री विद्यासागर जी की चेतन कृति**" में हमने सभी साधकों का बिन्दु परिचय और आचार्य श्री से संबंधित बहुत सी जानकारी को इसमें संग्रहित किया है। इस कृति को पूरा करने में मुनि श्री योगसागर जी महाराज, मुनि श्री सुधासागर जी महाराज, मुनि श्री प्रमाणसागर जी महाराज, मुनि श्री अभयसागर जी महाराज, मुनि श्री प्रसादसागर जी महाराज का मार्गदर्शन एवं मुनि श्री संभवसागर जी महाराज, मुनि श्री भावसागर जी महाराज का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है। इस कृति में 2015 तक प्रदान दीक्षाओं का विवरण है।

परम पूज्य आचार्य श्री जी के 50वें मुनि दीक्षा के स्वर्णिम् संयमोत्सव वर्ष 2017-18 के पावन अवसर पर इस कृति का प्रकाशन हमारे साधर्मी मुनिगणों के सहयोग और श्रीमति सुनीता जैन धर्मपत्नि श्री विजय कुमार जैन 'वट्टी सेठ', विजय फाउण्ड्री परिवार, खुरई, जिला-सागर (म.प्र.) ने अपना द्रव्य सहयोग देकर प्रकशित कराया। इस कृति का शब्द संयोजना, डिजायन आदि विपुल जैन, विदिशा ने बड़ी मेहनत करके इसको सुन्दर कृति का रूप दिया और भी हमारे साधर्मी भाई जैसे - सौरभ जैन चरगुवां ने इसमें सहयोग दिया। ये सभी श्रावकगण बहुत ही साधुवाद के पात्र हैं। अन्त में यह कृति पूज्यवर, गुरुवर, हमारे आराध्य, हमारे उद्धारक आचार्य श्री जी के मुनि दीक्षा वर्ष के अवसर पर उन्हीं को समर्पित है और यही भावना है कि हे गुरुवर! आपके आशीर्वाद से हम सभी साधकगण अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करें।

इसी मंगल शुभ भावना के साथ विराम लेता हूँ।

।।इति - शुभम् भूयात् ।।

सतना (म.प्र.)
16 नवम्बर 2016
मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया
(आचार्य पद दिवस)

गुरु चंचरीक
मुनि अजितसागर

अहंकारी का अधोगमन होता है, विनयी हमेशा उर्ध्वगामी होता है।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य प्रवर श्री शांतिसागर जी महाराज

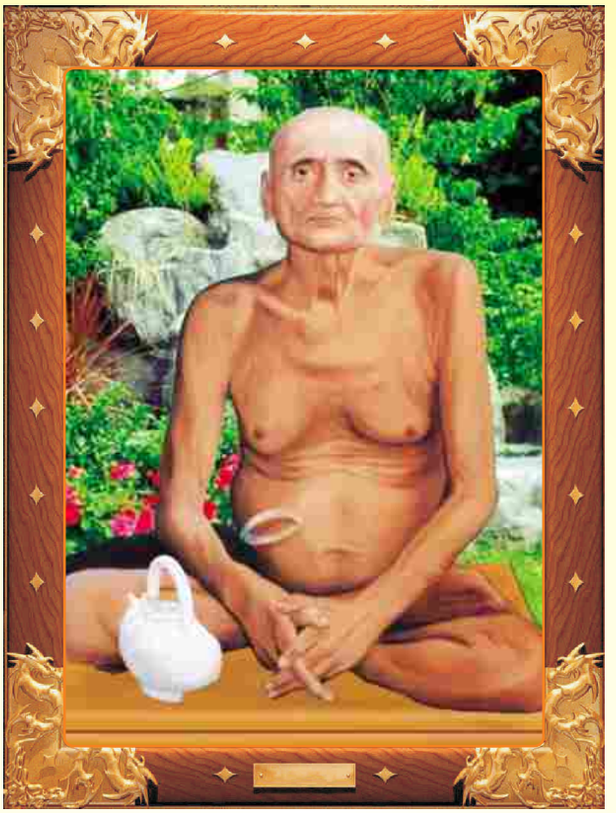

पूर्व नाम	:	श्री सातगौड़ा पाटिल
पिता का नाम	:	श्री भीमगौड़ा जी पाटिल
माता का नाम	:	श्रीमती सत्यवती जी
जन्म दिनांक	:	25 जुलाई 1872, बुधवार, आषाढ़ कृष्ण – 6, वि. सं. – 1929
जन्म स्थान	:	येलगुल, बेलगांव (कर्नाटक) (नाना के घर), भोजग्राम के समीप
ब्रह्मचर्य व्रत	:	18 वर्ष की उम्र में
क्षुल्लक दीक्षा	:	सन् – 1913, ज्येष्ठ शुक्ल–13, वि. सं. – 1970 उत्तूर ग्राम
ऐलक दीक्षा	:	15 जनवरी 1916, बुधवार, पौष शुक्ल – 14, वि. सं. – 1973 श्री दिग. जैन सिद्धक्षेत्र गिरनार जी, जिला – जूनागढ़ (गुजरात)
मुनि दीक्षा	:	2 मार्च 1920, मंगलवार फाल्गुन शुक्ल – त्रयोदशी, वि. सं. – 1976 यरनाल, बेलगांव (कर्नाटक)
दीक्षा गुरु	:	मुनि श्री देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज
आचार्य पद	:	8 अक्टूबर 1924, बुधवार आश्विन शुक्ल –11, वि. सं. – 1981 समडोली, जिला – सांगली (महाराष्ट्र)
समाधि	:	18 सितम्बर 1955, रविवार द्वितीय भाद्रपद शुक्ल – 2, वि. सं. – 2012 श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र कुन्थलगिरि, उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)

हे मानी प्राणी! देख तो इस पानी को और हो जा पानी – पानी।

चारित्र चूड़ामणि आचार्य प्रवर श्री वीरसागर जी महाराज

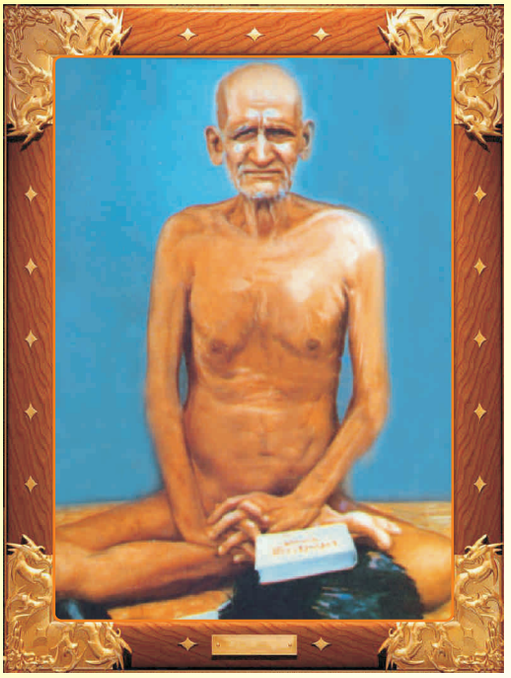

पूर्व नाम	:	श्री हीरालाल जी गंगवाल
पिता का नाम	:	श्री रामसुख जी गंगवाल
माता का नाम	:	श्रीमती भागूबाई जी (भाग्यवती बाई)
जन्म दिनांक	:	सन् – 1876 आषाढ़ शुक्ल – 15 (पूर्णिमा), वि. सं. – 1933
जन्म स्थान	:	ईरगांव, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
ब्रह्मचर्य व्रत	:	
क्षुल्लक दीक्षा	:	23 फरवरी 1923, शनिवार, फाल्गुन शुक्ल – 7 वि. सं. – 1980, कुम्भोज बाहुबली, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
ऐलक दीक्षा	:	
मुनि दीक्षा	:	8 अक्टूबर 1924, बुधवार, आश्विन शुक्ल – 11 वि. सं. 1981, समडोली, सांगली (महाराष्ट्र)
दीक्षा गुरु	:	आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज
आचार्य पद	:	8 सितम्बर 1955, गुरुवार द्वितीय भाद्रपद कृष्ण –7, वि. सं. – 2012 श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र चूलगिरि (खानिया जी) जयपुर (राजस्थान)
समाधि	:	23 सितम्बर 1957, सोमवार, आश्विन कृष्ण – अमावस्या वि. सं. – 2014, श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र चूलगिरि (खानिया जी), जयपुर (राजस्थान)

सिद्धांत वारिधि आचार्य प्रवर श्री शिवसागर जी महाराज

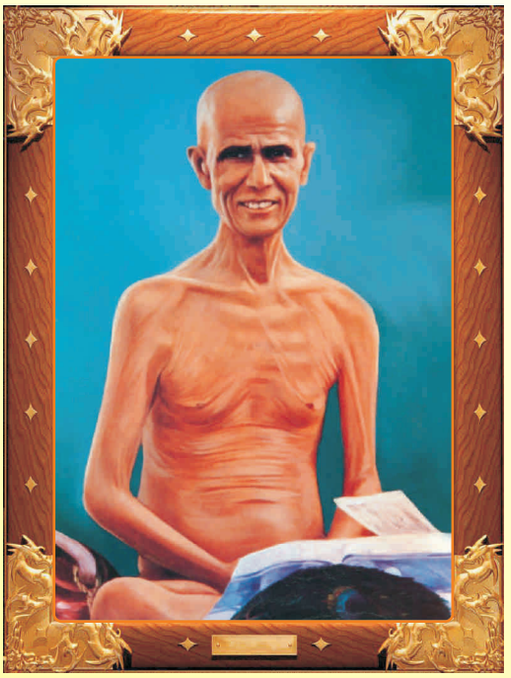

पूर्व नाम	:	श्री हीरालाल जी रांवका
पिता का नाम	:	श्री नेमीचन्द जी रांवका
माता का नाम	:	श्रीमती दगड़ाबाई जी
जन्म दिनांक	:	सन् 1901, वि. सं. – 1958
जन्म स्थान	:	अड़गांव, औरांगाबाद (महाराष्ट्र)
लौकिक शिक्षा	:	तीसरी कक्षा
ब्रह्मचर्य व्रत	:	वि. सं. 1986 में आ. श्री शांतिसागर जी से दूसरी प्रतिमा के व्रत लिए, वि. सं. 1999 में सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरी जी में सातवीं प्रतिमा ली
क्षुल्लक दीक्षा	:	वि. सं. – 2000, श्री दिग. जैन सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट जी जिला–खरगोन (म.प्र.)
ऐलक दीक्षा	:	नहीं हुई
मुनि दीक्षा	:	6 जुलाई 1949, आषाढ़ शुक्ल – 11, वि. सं. – 2006 नागौर (राजस्थान)
दीक्षा गुरु	:	आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज
आचार्य पद	:	3 नवम्बर 1957, रविवार, कार्तिक शुक्ल – 11 वि. सं. – 2014, श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र चूलगिरि (खानिया जी), जयपुर (राजस्थान)
समाधि	:	16 फरवरी 1969, रविवार, फाल्गुन कृष्ण – अमावस्या वि. सं. – 2025, श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र महावीर जी जिला – सवाई माधोपुर (राजस्थान)

बड़प्पन वही जो सही स्वीकार करे ।

पूज्य साहित्य मनीषी आचार्य प्रवर श्री ज्ञानसागर जी महाराज

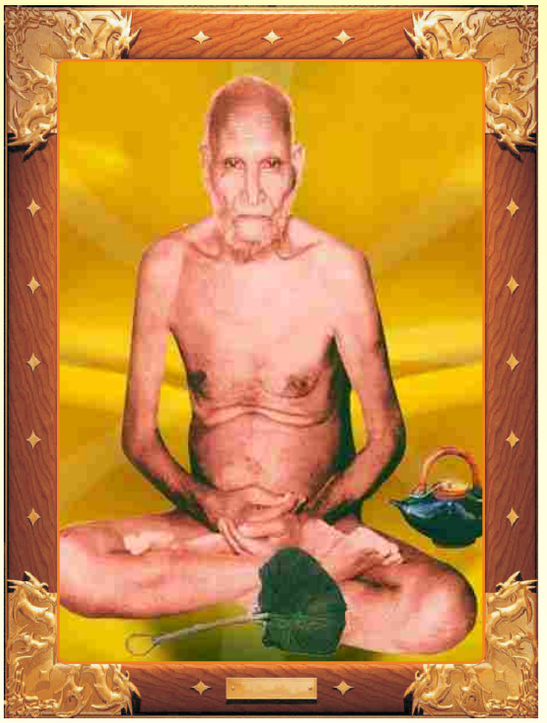

पूर्व नाम	:	श्री भूरामल जी शास्त्री (शान्तिकुमार भी था)
पिता का नाम	:	श्री चतुर्भुज जी छावड़ा
माता का नाम	:	श्रीमती घृतवरी देवी जी छावड़ा
जन्म दिनांक	:	24 अगस्त 1897, सोमवार, भाद्रपद कृष्ण एकादशी, वि. सं. – 1954
जन्म स्थान	:	राणोली, जिला – सीकर (राजस्थान)
लौकिक शिक्षा	:	स्याद्वाद् विद्यालय बनारस में संस्कृत साहित्य एवं जैन दर्शन की उच्च शिक्षा प्राप्त की
ब्रह्मचर्य व्रत	:	26 जून 1947, गुरुवार (सातवीं प्रतिमा के रूप में), आषाढ़ शुक्ल – अष्टमी वि. सं. – 2004, अजमेर नगर में (आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से)
क्षुल्लक दीक्षा	:	25 अप्रैल 1955, सोमवार (अक्षय तृतीया), मन्सूरपुर (मुजफ्फरनगर–उ.प्र.) (दीक्षा उपरांत आपका नाम क्षुल्लक श्री ज्ञानभूषण जी हुआ ।)
ऐलक दीक्षा	:	सन् – 1957, वि. सं. – 2014 (आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज से)
मुनि दीक्षा	:	22 जून 1959, सोमवार, आषाढ़ कृष्ण – द्वितीया, वि. सं.–2016 खनिया जी की नसिया, जयपुर (राजस्थान)
दीक्षा गुरु	:	आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज
आचार्य पद	:	7 फरवरी 1969, शुक्रवार, फाल्गुन कृष्ण – 5, वि. सं. – 2025 नसीराबाद, अजमेर (राजस्थान)
दीक्षित शिष्यगण	:	आचार्य श्री विद्यासागर जी, आचार्य कल्प श्री विवेकसागर जी मुनि श्री विजयसागर जी, ऐलक श्री सन्मतिसागर जी, क्षुल्लक श्री आदिसागर जी क्षुल्लक श्री स्वरूपानंद जी, क्षुल्लक श्री सुखसागर जी, क्षुल्लक श्री संभवसागर जी
चारित्र चक्रवर्ती पद	:	20 अक्टूबर 1972 (नसीराबाद में क्षुल्लक श्री स्वरूपानंद जी की दीक्षा के समय)

सहज जीवन जीना सीखे, मान के अभाव में मानव स्वयमेव सहज हो जाता है।

आचार्य पद त्याग	:	22 नवम्बर 1972, बुधवार, मार्गशीर्ष कृष्ण – द्वितीया, वि. सं. – 2029 नसीराबाद (राजस्थान)
समाधि	:	1 जून 1973, शुक्रवार, ज्येष्ठ कृष्ण – 15 (अमावस्या) वि. सं. – 2030, प्रात: 10 बजकर 50 मिनिट पर नसीराबाद, अजमेर (राजस्थान)
साहित्य सृजन	:	संस्कृत ग्रंथ :- महाकाव्य – जयोदय (दो भाग), वीरोदय, सुदर्शनोदय, भद्रोदय, दयोदय (चम्पू काव्य), मुनि मनोरंजनाशीति (मुक्तक काव्य), ऋषि कैसा होता है (मुक्तक काव्य) सम्यक्त्वसार शतक, प्रवचनसार प्रतिरूपक, शांतिनाथ पूजन विधान हिन्दी ग्रंथ :- ऋषभावतार, गुणसुन्दर वृतान्त, भाग्योदय, जैन विवाह विधि, तत्त्वार्थसूत्र टीका, कर्त्तव्यपथ प्रदर्शन, विवेकोदय, सचित्त विवेचन, सचित्त विचार, देवागम स्तोत्र पद्यानुवाद साहित्य :- नियमसार, अष्टपाहुड़, पवित्र मानव जीवन, स्वामी कुंद-कुंद और सनातन जैन धर्म, इतिहास के पन्ने, मानव धर्म, समयसार तात्पर्य वृत्ति टीका (दार्शनिक ग्रंथ हैं)

महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :-

व्यक्तित्व :

जयोदय महाकाव्य बाल ब्रह्मचारी महाकवि पंडित भूरामल जी की यशस्वी लेखनी से प्रसूत हुआ है, जो आगे चलकर जैन मुनि अवस्था में आचार्य ज्ञानसागर जी के नाम से प्रसिद्ध हुए । श्री भूरामल जी एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने निरन्तर आत्म साधना की ओर अग्रसर रहते हुए एक नहीं अनेक महाकाव्यों का सृजन किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि आत्मसाधक योगी के लिए काव्य आत्मसाधना का अंग बन गया और सम्पूर्ण जीवन काव्यमय हो गया । कवि भूरामल जी के व्यक्तित्व का बहिरंग चित्र एक प्रत्यक्षदर्शी के निम्न शब्दों में दृश्यमान हो उठा –

''गौर वर्ण, क्षीण शरीर, चौड़ा ललाट, भीतर झांकती आँखें, हित-मित-प्रिय धीमा बोल, संयमित सधी चाल, सतत् शान्त मुद्रा यही था उनका अंगन्यास ।''

आत्मा में वीतरागता का अवतरण होने के बाद उनके अंतरंग की छवि वक्ता ने निम्न विशेषणों से मूर्तित कर दी है –

''विषयाशक्ति-विरक्त, अपरिग्रही, ज्ञान-ध्यान-तप में लवलीन, करुणा-सागर, पर-दु:खकातर, विद्यारसिक, कविहृदय, प्रवचनपटु, शान्तस्वभावी, निस्पृही, समता, विनय, धैर्य और सहिष्णुता की साकार मूर्ति, भद्रपरिणामी, साधना में कठोर, वात्सल्य में नवनीत से भी कोमल एवं सरल प्रकृति तेजस्वी महात्मा – बस यही था उनका अन्तर का आभास ।''

ऐसे व्यक्तित्व के धनी योगी का जन्म राजस्थान में जयपुर समीप सीकर जिले के राणोली ग्राम में हुआ था । उनके पिता का नाम श्री चतुर्भज एवं माता का नाम श्रीमति घृतवरी देवी था । कवि ने स्वयं जयोदय महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की स्वोपज्ञ टीका के अनन्तर निम्न शब्दों में अपने तथा अपने माता-पिता का उल्लेख किया है –

''श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुज: स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।।''

कवि का भूरामल नाम उनके गौर वर्ण एवं लुनाई को देखते हुए रखा गया था । उनका एक और नाम था 'शान्तिकुमार' जो संभवत: राशि के आधार पर रखा गया था ।

श्री भूरामल जी पाँच भाई थे । बड़े भाई का नाम छगनलाल था । तीन भाई उनसे छोटे थे – गंगाबक्स, गौरीलाल, देवीलाल ।

शिक्षा:- शैशवकाल से ही भूरामल जी की अध्ययन में तीव्र रूचि थी । उन्होंने अपने जन्म स्थल में ही कुचामनवासी पं. जिनेश्वरदास जी से प्रारम्भिक, प्राथमिक, लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा प्राप्त की, पर गाँव में उच्चे शिक्षा प्राप्त न हो सकी । सन् 1907 (विक्रम संवत 1964) में उनके पिता श्री चतुर्भुज जी की मृत्यु हो गयी । उस समय बड़े भाई की उम्र 12 वर्ष तथा भूरामल जी की उम्र 10 वर्ष थी । पिता के आकस्मिक निधन से घर की अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई । फलस्वरूप बड़े भाई छगनलाल को जीवकोपार्जन हेतु बाहर जाना पड़ा । वे गया नगर (बिहार) पहुँचे और वहाँ एक जैन व्यवसायी के यहाँ कार्य करने लगे । आगे अध्ययन का साधन न होने से भूरामल जी भी अपने अग्रज के समीप गया नगर चले गये और एक जैन व्यवसायी के प्रतिष्ठान में कार्य सीखने लगे ।

गया नगर में जीवन-यापन करते हुए लगभग एक वर्ष ही व्यतीत हुआ था कि उनका साक्षात्कार किसी समारोह में भाग लेने आये स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.) के छात्रों से हुआ । उन्हें देखकर भूरामल जी के हृदय में वाराणसी जाकर विद्याध्ययन

करने की तीव्र इच्छा हुई । उन्होंने अपनी इच्छा बड़े भाई से निवेदित की, पर आर्थिक प्रतिकूलता के कारण बड़े भाई ने अनुमति नहीं दी । भूरामल जी अपनी ज्ञान पिपासा का दमन करने में समर्थ न हो सके और लगभग 15 वर्ष की आयु में अध्ययनार्थ वाराणसी चले गये ।

स्याद्वाद महाविद्यालय में पहुँचकर भूरामल जी ने मात्र अध्ययन को ही महत्व दिया । जहाँ आपके अन्य साथियों का लक्ष्य परीक्षायें उत्तीर्ण कर उपाधियाँ अर्जित करना था, वहीं आपका उद्देश्य ज्ञानार्जन करना ही था । उनका विचार था कि उपाधियाँ तो उत्तीर्णांक पाने योग्य से भी अर्जित की जा सकती हैं । यदि उपाधियों को ही लक्ष्य बनाया जाये तो ज्ञान गौण हो जावेगा । वे ज्ञान गाम्भीर्य का प्रमाण कदापि नहीं हो सकता । इसी धारणा के फलस्वरूप उन्होंने अनावश्यक परीक्षायें न देकर अहोरात्र ग्रंथों का अध्ययन किया । स्वल्पकाल में ही शास्त्री स्तर तक के सभी ग्रंथों का अध्ययन पूर्ण कर लिया । क्वीन्स कॉलेज, काशी से शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की । स्याद्वाद महाविद्यालय से उन्होंने संस्कृत, संस्कृत साहित्य और जैन दर्शन की उच्च शिक्षा प्राप्त की ।

नव प्रवर्तन :-

उस समय पाठ्यक्रम में व्याकरण, साहित्य आदि जैनेत्तर ग्रंथ ही थे, क्योंकि अधिकांश जैन ग्रंथ अप्रकाशित थे, अतएव अनुपलब्ध थे । फलस्वरूप जैन छात्रों को जैनेत्तर ग्रंथों का ही अध्ययन करना पड़ता था । इससे भूरामल जी को अत्यंत दु:ख होता था । वे सोचते थे कि जैन आचार्यों ने व्याकरण, न्याय एवं साहित्य के अद्वित्तीय ग्रंथों की रचना की है, किन्तु हम उन्हें पढ़ने के सौभाग्य से वंचित हैं । यह पीड़ा उनके मन में उथल-पुथल मचाती रहती थी । तब तक जैन-न्याय और व्याकरण के कुछ ग्रंथ प्रकाशित हो चुके थे । इसका सुफल यह हुआ कि आपने अन्य लोगों के सहयोग के अथक प्रयत्न करके उन ग्रंथों को काशी विश्वविद्यालय और कलकत्ता परीक्षालय के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करवा दिया । इस समय आपकी दृष्टि इस तथ्य पर गयी कि जैन वाड्मय में काव्य और साहित्य के ग्रंथों की न्यूनता है । अत: आपने संकल्प किया कि अध्ययन समाप्ति के अनन्तर इस न्यूनता को दूर करेंगे । यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि वाराणसी में आपने व्याकरण, न्याय और साहित्य के जैनाचार्य विरचित ग्रंथों का ही अध्ययन किया । उस समय स्याद्वाद महाविद्यालय में जितने भी अध्यापक थे, वे सभी अधिकांशत: ब्राह्मण ही थे । उन्हें जैन ग्रंथों को पढ़ाने और प्रकाश में लाने की तीव्र इच्छा थी । अतएव जैसे भी, जिस अध्यापक से भी संभव हुआ आपने जैन ग्रंथों का अध्ययन किया ।

इस समय महाविद्यालय में पंडित उमरावसिंह जी धर्मशास्त्र के अध्यापक थे, जो बाद में ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण कर ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए । उनसे भूरामल जी को जैन ग्रंथों के पठन-पाठन के लिए प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला । इसलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में उनका गुरु रूप स्मरण किया –

''विनमामि तु सन्मतिकमकामं द्यामितकैर्महितं जगति तमाम् ।
गुणिनं ज्ञानानन्दमुदासं रुचां सुचारुं पूर्तिकरं कौ ।। जयोदय 28/100 ।।

प्रस्तुत श्लोक के प्रत्येक चरण के प्रथम अक्षर के योग से 'विद्यागुरु' पद बनता है तथा उनका 'ज्ञानानन्द' नाम उल्लेखित कर भूरामल जी ने अपने गुरु को नमन किया ।

भूरामल जी अध्ययनकाल से ही स्वावलम्बी थे । विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने कभी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया । वे सायंकाल गंगा के घाटों पर गमछे बेच कर स्वयं का खर्चा चलाते थे । पं. श्री कैलाशचंद जी शास्त्री के अनुसार इस महाविद्यालय के 70 वर्ष के इतिहास में ऐसी दूसरी मिसाल देखने या सुनने को मिली ।

कार्यक्षेत्र :-

अध्ययन समाप्त कर पं. भूरामल जी शास्त्री अपने जन्मस्थली राणौली लौट आये । अब उनके समक्ष कार्यक्षेत्र के चुनाव की समस्या थे । उस समय घर की आर्थिक स्थिति ठीक न थी और अन्य विद्वान महाविद्यालय से निकलते ही सवैतनिक सेवा स्वीकार कर रहे थे । तथापि उनको सवैतनिक अध्यापन कार्य करना उचित प्रतीत नहीं हुआ । अतएव वे अपने ग्राम में रहकर ही व्यवसाय द्वारा आजीविका अर्जित करते हुए नि:स्वार्थ भाव से स्थानीय जैन बालको को शिक्षा प्रदान करने लगे । इसी बीच उनके अग्रज श्री छगनलाल जी भी गया नगर से वापिस आ गये । अत: दोनों भाईयों ने मिलकर व्यवसाय प्रारम्भ किया और अनुजों के लालन-पालन एवं शिक्षा-दीक्षा का उत्तरदायित्व निभाया ।

पं. भूरामल जी की व्यवसायिक योग्यता और विद्वता देख कर अनेक लोग विवाह प्रस्ताव लेकर आये। उनके भाईयों तथा संबंधियों ने विवाह करने हेतु बहुत आग्रह किया, किन्तु आपने विवाह करना अस्वीकार कर दिया । क्योंकि आपने अध्ययनकाल में ही आजीवन ब्रह्मचारी रहकर साहित्य सृजन एवं प्रचार में ही जीवन व्यतीत करने का संकल्प लिया था ।

साहित्य सृजन की प्रेरणा :-

श्री भूरामल जी को साहित्य सृजन हेतु प्रेरित करने वाले दो कारण हैं ।इनमें प्रथम है जैन वाङ्मय में काव्य और साहित्य की न्यूनता एवं अप्रकाशित होना और द्वित्तीय है अध्ययनकाल की एक घटना । घटना इस प्रकार है – बनारस में जब एक दिन भूरामल जी ने एक जैनेत्तर विद्वान के समीप पहुँचकर जैन साहित्य का अध्ययन कराने हेतु निवेदन किया तो उन विद्वान ने व्यंग्य करते हुए कहा कि 'जैनियों के यहाँ है कहाँ ऐसा साहित्य, जो मैं तुम्हें पढ़ाऊँ ? यह सुनकर क्षण भर को भूरामल जी अचेत से हो गये जैसे काठ मार दिया हो किसी ने । शब्द बाण की भाँति पर्दे को चीरते हुए हृदय तक पहुँच गये उस दिन उन्हें मन में बड़ी टीस हुई । मन ही मन खेद करते हुए अपना सा मुँह लेकर वापिस आ गये । उसी समय उन्होंने दृढ़ संकल्प किया कि मैं अध्ययन काल के उपरान्त ऐसे साहित्य का निर्माण करूँगा जिसे देखकर जैनेत्तर विद्वान भी 'दाँतों तले अँगुली दबा लें ।

साहित्य सृजना :-

अपने संकल्प को कार्य रूप देने हेतु भूरामल जी व्यवसाय में उदासीन हो गये । व्यवसाय का कार्य छोटे भाईयों को सौंप कर वे पूर्ण रूपेण अध्ययन-अध्यापन और साहित्य-सृजन में जुट गये । उन्होंने अध्ययन और लेखन को ही अपनी दिन चर्या बना लिया । वे दिन में एक बार शुद्ध सात्विक भोजन करने लगे । इसी बीच आपको दाँता (रामगढ़) राजस्थान में संस्कृत अध्यापन के लिए बुलाया गया । वे वहाँ जाकर परमार्थ भाव से अध्यापन कार्य करने लगे ।

इस प्रकार अध्यापन एव अध्ययन कार्य करते हुए संस्कृत एवं हिन्दी ग्रंथों की रचना कर इन भाषाओं के साहित्य को विपुल समृद्धि प्रदान की ।

चारित्र की ओर कदम :-

इस प्रकार अध्ययन-अध्यापन और अभिनव ग्रंथों की रचना करते हुए जब भूरामल जी की युवावस्था व्यतीत हुई, तब आपके मन में चारित्र धारण कर आत्म कल्याण करने की अन्त:स्थिति भावना बलवती हो उठी। फलस्वरूप बाल ब्रह्मचारी होते हुए भी सन् 1947 (विक्रम संवत् 2004) में अजमेर नगर में आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से व्रत रूप से ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण कर ली । सन् 1949 (विक्रम संवत् 2006) में आषाढ़ शुक्ल अष्टमी को पैतृक घर पूर्णतया त्याग दिया । इस अवस्था में भी वे निरन्तर ज्ञानाराधना में संलग्न रहे । उन्होंने इसी समय प्रकाशित हुए सिद्धांत ग्रंथ धवल, जय धवल एवं महाबन्ध का विधिवत् स्वाध्याय किया ।

चारित्र पथ पर अग्रसर होते हुए 25 अप्रैल 1955, अक्षय तृतीया तिथि को ब्रह्मचारी जी ने मन्सूरपुर (मुजफ्फरनगर, उ.प्र.) में आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की और उन्हें क्षुल्लक श्री ज्ञानभूषण नाम दिया गया ।

आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर होते हुए आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज के द्वारा सन् 1957 में ऐलक के रूप में दीक्षित किये गये ।

जब ऐलक श्री ज्ञानभूषण जी ने अंतरंग निर्मलता में वृद्धि के फलस्वरूप स्वयं को उच्चतम संयम में पालन में समर्थ पाया तब आषाढ़ कृष्ण 2, विक्रम संवत् 2016, ईस्वी सन् 22 जून 1959, सोमवार को खनियाँ जी की नसिया (जयपुर) में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से प्रथम मुनि शिष्य के रूप में दीक्षा ग्रहण की और मुनि श्री ज्ञानसागर जी के नाम से प्रसिद्ध हुए । इस समय भी मुनि श्री की अध्ययन के प्रति रुचि चरम सीमा पर थी । अतएव वे संघस्थ मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि को ग्रन्थ पढ़ाते थे । अध्यापन के प्रति रुचि देखकर सहज की उनको संघ का उपाध्याय बना दिया गया। वयोवृद्ध होते हुए भी धर्म प्रभावना हेतु उन्होंने राजस्थान में विहार किया । वहाँ नगर-नगर भ्रमण कर धर्मोपदेश दिया । उनके प्रवचनों से प्रभावित होकर अनेक लोगों के जीवन में धर्म का प्रवेश हुआ ।

आचार्य पद :-

फाल्गुन कृष्ण पंचमी, विक्रम संवत् 2025, शुक्रवार 7 फरवरी 1969 को नसीराबाद, जिला अजमेर (राजस्थान) की जैन समाज ने आपको आचार्य पद से अलंकृत किया, उसी दिन मुनि श्री विवेकसागर जी ने आपसे दीक्षा ग्रहण की ।

स्व-पर कल्याण करते हुए आचार्य श्री ज्ञानसागर जी लगभग 80 वर्ष के हो गये, किन्तु उनके अध्ययन-अध्यापन पर शारीरिक अवस्था का कोई प्रभाव न पड़ा । उनके संघ में अध्ययन-अध्यापन का कार्यक्रम वर्तमान युग के अध्यापक एवं अध्येता के लिए आश्चर्य कारक है । आचार्य श्री के संघ में अध्ययन का कार्यक्रम उदाहरणत: ग्रीष्मकाल में इस प्रकार था –

(1) प्रात: 5.30 से 6.30 तक अध्यात्म तरंगिणी और समयसार कलश ।
(2) प्रात: 7 से 8 तक प्रमेयरत्नमाला ।
(3) प्रात: 8 से 9 तक समयसार ।
(4) प्रात: 10.30 से 11.30 तक अष्टसहस्री।
(5) मध्यान्ह 1 से 2 तक कातन्त्ररूपमाला व्याकरण ।
(6) मध्यान्ह 3 से 4 तक पंचास्तिकाय ।
(7) सायं 4 से 5 तक पंचतंत्र ।
(8) सायं 5 से 6 तक जैनेन्द्र व्याकरण ।

महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी का हस्तलेख सुन्दर एवं स्पष्ट था । वे आचार्य पद पर आसीन् होते हुए भी ख्याति, लाभ आदि से परिपूर्ण दूर रहते थे । यही कारण है कि उनके समाधिमरण के पश्चात् जयोदय महाकाव्य की स्वोपज्ञ टीका (पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध दो भागों में) तथा मुनि मनोरंजनाशीति (मुनि मनोरंजन शतक) प्रकाशित हो सके हैं ।

शिष्यवृन्द :-

मुनि श्री के अगाध ज्ञान एवं प्रखर तप से प्रभावित अनेक आत्मार्थियों ने उनका शिष्यत्व प्राप्त किया और मनुष्य पर्याय को सफल बनाया । उनके प्रमुख शिष्यों के नाम – आचार्य श्री विद्यासागर जी, आचार्य कल्प श्री विवेकसागर जी, मुनि श्री विजयसागर जी, ऐलक श्री सन्मतिसागर जी, क्षुल्लक श्री आदिसागर जी, क्षुल्लक श्री स्वरूपानंद जी, क्षुल्लक श्री सुखसागर जी, क्षुल्लक श्री संभवसागर जी महाराज थे ।

इनमें आचार्य श्री विद्यासागर जी वर्तमान युग के सर्वाधिक लब्ध ख्यात मुनि आचार्य हैं । आपने अपने गुरु के ही सदृश्य 'मूक माटी' महाकाव्य, नर्मदा का नरम कंकर, तोता क्यों रोता ? डूबो मत / लगाओ डुबकी, श्रमण शतक, भावना शतक, निरंजन शतक, परीषहजय शतक, सुनीति शतक आदि अनेक संस्कृत एवं हिन्दी शतकों तथा विभिन्न साहित्य का सृजन किया है एवं उसी में रत हैं।

चारित्र चक्रवर्ती पद :-

सन् 1972 में आचार्य श्री ज्ञानसागर जी का चातुर्मास नसीराबाद में हुआ । यहीं पर आचार्य श्री से 20 अक्टूबर 1972 को स्वरूपानंद जी ने क्षुल्लक दीक्षा अंगीकार की । इस अवसर पर जैन समाज ने आपको **चारित्र चक्रवर्ती** पद से सम्बोधित कर अपना श्रद्धातिरेक एवं प्रगाढ़ भक्तिभाव अभिव्यक्त किया ।

समाधिमरण :-

ज्ञान एवं तप में युवा आचार्य श्री ज्ञानसागर जी का शरीर वृद्धावस्था के कारण क्रमश: क्षीण होने लगा । गठिया वात के कारण सभी जोड़ों में अपार पीढ़ा होने लगी । इस स्थिति में उन्होंने स्वयं को आचार्य पद का निर्वाह करने असमर्थ पाया और जैनागम के नियमानुसार आचार्य पद का परित्याग कर सल्लेखना व्रत करने का दृढ़ निश्चय किया । अपने संकल्प को कार्यरूप में परिणति करने हेतु उन्होंने नसीराबाद में मृगशिर कृष्ण–2, विक्रम संवत् – 2029, बुधवार, 22 नवम्बर 1972 को लगभग 25000 जनसमुदाय के समक्ष अपने योग्यतम शिष्य मुनि श्री विद्यासागर जी से निवेदन किया – ''यह नश्वर शरीर धीरे–धीरे क्षीण होता जा रहा है, मैं अब आचार्य पद छोड़कर पूर्णरूपेण आत्मकल्याण में लगना चाहता हूँ । जैनागम के अनुसार ऐसा करना आवश्यक और उचित है, अत: मैं अपना आचार्य पद तुम्हें सौंपता हूँ।''

आचार्य श्री के इन शब्दों की सहजता, सरलता तथा उनके असीमित मार्दव गुण से मुनि श्री विद्यासागर जी द्रवित हो उठे । तब आचार्य श्री ने उन्हें अपने कर्त्तव्य, गुरु–सेवा, भक्ति और आगम की आज्ञा का स्मरण कराकर सुस्थिर किया । उच्चासान का त्याग कर उस पर मुनि श्री विद्यासागर जी को विराजित किया । शास्त्रोक्त विधि से आचार्य पद प्रदान करने की प्रक्रिया सम्पन्न की ।

अनन्तर स्वयं नीचे के आसन पर बैठ गये । उनकी मोह एवं मानमर्दन की अद्भुत पराकाष्ठा चरम सीमा पर पहुँच गयी । अब मुनि श्री ज्ञानसागर जी ने अपने आचार्य श्री विद्यासागर जी से अत्यंत विनयपूर्वक निवेदन किया –

''भो गुरुदेव! कृपां कुरु ।''

'हे गुरुदेव ! मैं आपकी सेवा में समाधि ग्रहण करना चाहता हूँ । मुझ पर अनुग्रह करें ।' आचार्य श्री विद्यासागर जी ने अत्यंत श्रद्धाविह्वल अवस्था में उनको सल्लेखना व्रत ग्रहण कराया । मुनि श्री ज्ञानसागर जी सल्लेखना व्रत का पालन करने के लिए क्रमश: अन्न,

फलों का रस एवं जल का परित्याग करने लगे ।28 मई 1973 को आहार का पूर्ण रूपेण त्याग कर दिया ।वे पूर्ण निराकुल होकर समता भाव से तत्त्व चिन्तन करते हुए आत्मरमण में लीन रहते ।आचार्य श्री विद्यासागर जी, ऐलक सन्मतिसागर जी एवं क्षुल्लक स्वरूपानंद जी निरन्तर अपने पूर्व आचार्य के समीप रहकर तन्मयता व तत्परता से सेवा करते, सम्बोधित करते थे ।

ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या, 1 जून 1973 का दिन, समाधिमरण का पाठ चल रहा था ।चारों ओर परम शांति थी ।''ऊँ नमः सिद्धेभ्यः'' का उच्चारण हृदयतंत्री को झंकृत कर रहा था ।उसी समय आत्मलीन मुनि श्री जी ने प्रातः 10 बजकर 50 मिनिट पर पार्थिव देह का परित्याग कर दिया ।

कृतित्व :-

महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में अनेक ग्रंथों का सृजन कर इन भाषाओं के साहित्य भण्डार को समृद्ध किया है ।उनकी यशस्वी लेखनी से प्रसूत साहित्य इस प्रकार है –

संस्कृत साहित्य :-

(क) महाकाव्य	(1) जयोदय
	(2) वीरोदय
	(3) सुदर्शनोदय
	(4) भद्रोदय (समुद्र दत्त चरित्र)
(ख) चम्पू काव्य	(1) दयोदय चम्पू
(ग) मुक्तक काव्य	(1) मुनि मनोरंजनशीति
	(2) ऋषि कैसा होता है ?
	(3) सम्यक्त्वसार शतक
	(4) संस्कृत शांतिनाथ विधान
(घ) छायानुवाद	(1) प्रवचनसार प्रतिरूपक

हिन्दी साहित्य :-

(क) महाकाव्य	(1) ऋषाभवतार
	(2) गुणसुन्दर वृतान्त
	(3) भाग्योदय
(ख) गद्य	(1) कर्त्तव्यपथ प्रदर्शन
	(2) मानव धर्म
	(3) सचित्त विवेचन
	(4) सचित्त विचार
	(5) स्वामी कुंदकुंद और सनातन धर्म
	(6) इतिहास के पन्ने
(ग) पद्य	(1) पवित्र मानव जीवन
	(2) सरल जैन विवाह विधि
(घ) टीका ग्रंथ	(1) तत्त्वार्थदीपिका (तत्त्वार्थसूत्र पर)
	(2) देवागम स्तोत्र का पद्यानुवाद
	(3) नियमसार का पद्यानुवाद
	(4) अष्टपाहुड़ का पद्यानुवाद
	(5) समयसार तात्पर्यवृत्ति का हिन्दी अनुवाद

-:-:-:-:-:::-:-:-:-

स्वयं में गुरुता का अनुभव करने वाल व्यक्ति ही गर्व करता है।

दिगम्बर सरोवर के राजहंस, संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

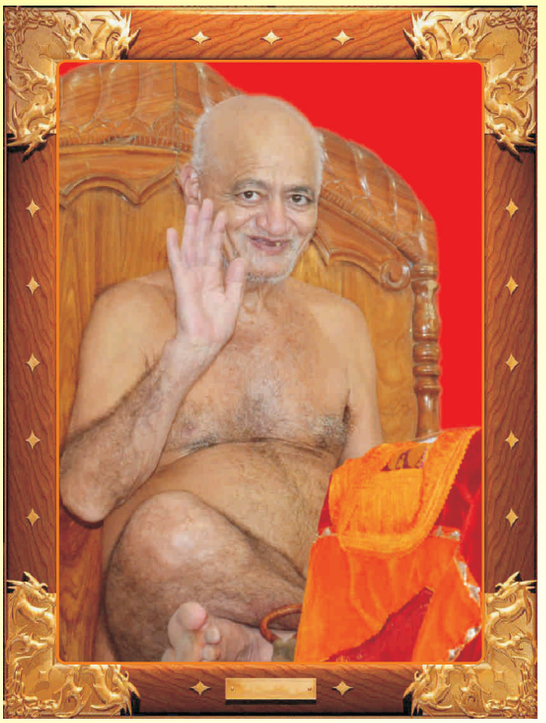

पूर्व नाम	:	श्री विद्याधर जी जैन अष्टगे
पिता	:	श्री मल्लप्पा जी जैन अष्टगे
माता	:	श्रीमाती श्रीमंती जी जैन अष्टगे
जन्म	:	10 अक्टूबर, 1946, आश्विन शुक्ला-15 वि. सं.- 2003 (शरद पूर्णिमा) सदलगा, चिक्कोड़ी, जिला - बेलगाँव (कर्नाटक)
लौकिक शिक्षा	:	नवमीं
ब्रह्मचर्य व्रत	:	1966 में आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज से
मुनि दीक्षा	:	30 जून, 1968, आषाढ़ शुक्ल-पंचमी वि. सं.-2025, अजमेर (राजस्थान)
दीक्षा गुरु	:	मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज
आचार्य पद	:	22 नवम्बर 1972, बुधवार, मार्गशीर्ष कृष्ण-2, वि. सं. 2029 नसीराबाद, जिला-अजमेर (राज.)
मातृ भाषा	:	कन्नड़
कृतित्व	:	1. चेतन कृतित्व: 120 मुनि, 172 आर्यिकायें, 20 ऐलक, 14 क्षुल्लक, 3 क्षुल्लिकायें और 1 हजार से अधिक ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणी बहिनें साधनारत हैं।

अचेतन कृतित्व :

संस्कृत रचनायें : 1. शारदा स्तुति, 2. श्रमण शतकम्, 3. निरंजन शतकम्, 4. भावना शतकम्, 5. परीषहजय शतकम्
6. सुनीति शतकम्, 7. चेतन चन्द्रोदय, 8. धीवरोदय चंपू काव्य (अप्रकाशित)

हिन्दी काव्य : 9. मूकमाटी महाकाव्य, 10. नर्मदा का नरम कंकर, 11. डूबो मत लगाओ डुबकी, 12. तोता क्यों रोता ?
13. चेतना के गहराव में, 14. अनेक हाईको कवितायें (अप्रकाशित हैं)

स्तुति सरोज : 13. आचार्य शान्तिसागर स्तुति, 14. आचार्य वीरसागर स्तुति, 15. आचार्य शिवसागर स्तुति
16. आचार्य ज्ञानसागर स्तुति, 17. अध्यात्म भक्ति गीत (7 भक्ति गीत)

हिन्दी शतक : 18. निजानुभव शतक, 19. मुक्तक शतक, 20. श्रमण शतक, 21. निरंजन शतक, 22. भावना शतक
23. परीषह जय शतक, 24. सुनीति शतक, 25. दोहादोहन शतक, 26. सूर्योदय शतक, 27. पूर्णोदय शतक
28. सर्वोदय शतक, 29. जिनस्तुति शतक

अनुवादित ग्रंथ : 1. कुन्दकुन्द का कुन्दन (समयसार), 2. निजामृत पान (समयसार कलश), 3. अष्ट पाहुड़, 4. नियमसार
5. बारस अणुवेक्खा, 6. पंचास्तिकाय, 7. इष्टोपदेश (बसंततिलका), 8. प्रवचनसार
9. समाधि सुधा शतक (समाधि शतक), 10. नव भक्तियाँ (आचार्य पूज्यपाद कृत)
11. समन्तभद्र की भद्रता (स्वयंभू स्तोत्र), 12. रयण मंजूषा (रत्नकरण्डक श्रावकाचार)
13. आप्त मीमांसा (देवागम स्तोत्र), 14. द्रव्य संग्रह (बसंततिलका छंद), 15. गोम्मटेश अष्टक, 16. योगसार
17. आप्त परीक्षा, 18. जैन गीता (समण सुत्तं), 19. कल्याण मंदिर स्तोत्र, 20. जिन स्तुति (पात्रकेसरी स्तोत्र)
21. गुणोदय (आत्मानुशासन), 22. स्वरूप संबोधन, 23. इष्टोपदेश (ज्ञानोदय), 24. द्रव्य संग्रह (बसंततिलका एवं ज्ञानोदय)

प्रवचन साहित्य : 1. प्रवचन पर्व, 2. प्रवचन पीयूष, 3. प्रवचनामृत, 4. प्रवचन पारिजात, 5. प्रवचन पंचामृत, 6. प्रवचन प्रदीप
7. प्रवचन प्रमेय, 8. प्रवचनिका, 9. प्रवचन सुरभि, 10. तेरह सौ एक, 11. धीवर की धी, 12. सर्वोदय सार
13. सीप के मोती, 14. विद्या वाणी, 15. अकिंचित् कर, 16. चरण आचरण की ओर, 17. कर विवेक से काम
18. धर्म देशना, 19. कुण्डलपुर देशना, 20. तपोवन देशना, 21. आदर्शों के आदर्श, 22. सिद्धोदय सार
23. कौन कहाँ तक साथ देगा, 24. समागम, 25. गुरुवाणी, 26. व्यामोह की पराकाष्ठा, 27. भक्त का उत्सर्ग
28. आत्मानुभूति ही समयसार, 29. मूर्त से अमूर्त की ओर, 30. स्वराज और भारत, 31. अहिंसा सूत्र, 32. मेरे सपनों का भारत,
33. भारत की भाषा राष्ट्र भाषा हो, 34. जैन दर्शन का ह्रदय, 35. जयन्ती से परे, 36. सत्य की छाँव में, 37. ब्रह्मचर्य चेतन का भोग, 38. भोग से योग की ओर, 39. आदर्श कौन .....?, 40. मर हम .... मरहम बनें, 41. मानसिक सफलता, 42. न धर्मो धार्मिकैर्विना, 43. डबडबाती आँखें । इस प्रकार 50 से अधिक कृतियाँ हैं।

ग्रन्थ प्रवचन : समयोपदेश भाग 1-2, गुरुवयणं, दिव्योपदेश, इष्टोपदेश, पंचास्तिकायोपदेश, श्रुताराधना भाग 1-2-3
(और भी बहुत सी कृतियाँ हैं जिनके नाम ज्ञात नहीं हो सके हैं ।)

श्रमण परम्परा के आदर्श संत जैनाचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

– डॉ. बारेलाल जैन, टीकमगढ़ (म.प्र.)

भारत–भू पर शान्ति सुधारस की वर्षा करने वाले अनेक महापुरुष और संत कवि जन्म ले चुके हैं। उनकी साधना और कथनी–करनी की एकता ने सारे विश्व को ज्ञानरूपी आलोक से आलोकित किया है। इन स्थितिप्रज्ञ पुरुषों ने अपनी जीवनानुभव की वाणी से त्रस्त और विघटित समाज को एक नवीन संबल प्रदान किया है। जिसने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं। राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद हजरत और आध्यात्मिक साधना के शिखर पुरुष आचार्य कुन्दकुन्द, पूज्यपाद, मुनि योगीन्दु, शंकराचार्य, संत कबीर, दादू नानक, बनारसीदास, ज्ञानतराय तथा महात्मा गाँधी जैसे महामना साधकों ने अपनी आत्म–साधना के बल पर स्वतंत्रता और समता के जीवन–मूल्य प्रस्तुत करके सम्पूर्ण मानवता को एक सूत्र में बाँध है। उनके त्याग और संयम में सिद्धांतों और वाणियों में आज भी सुख शांति की सुगंध सुवासित हो रही है। जीवन में आस्था और विश्वास, चरित्र और निर्मल ज्ञान तथा अहिंसा एवं निर्बैर की भावना को बल देने वाले विद्यासागर जी महाराज वर्तमान शिखर पुरुष हैं, जिनकी ओज और माधुर्यपूर्ण वाणी में ऋजुता, व्यक्तित्व में समता, जीने में सादगी की त्रिवेणी है। जीवन–मूल्यों को प्रतिष्ठित करने वाले बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री विद्यासागर जी स्वभाव से सरल और सब जीवों के प्रति मित्रवत् व्यवहार के संपोषक है, इसी कारण उनके व्यक्तित्व में विश्व–बंधुत्व की, मानवता की सौंधी–सुगन्ध विद्यमान है।

आश्विन शरद पूर्णिमा के पवित्र दिवस में संवत्–2003, 10 अक्टूबर 1946 को कर्नाटक प्रांत के बेलगांव जिले के सुप्रसिद्ध ग्राम **सदलगा** के श्रेष्ठी श्री मल्लप्पा पारसप्पा जी अष्टगे एवं श्रीमति श्रीमंती जी के परिवार में रात्रि को बालक श्री विद्याधर जी का जन्म चिक्कोड़ी ग्राम की अस्पताल में हुआ था। समीपस्थ ग्राम अक्किवाट स्थित ऋद्धि–सिद्धि सम्पन्न भट्टारक मुनि विद्यासागर के समाधिस्थल पर माता–पिता के अक्सर जाने तथा वहाँ पर भक्तिभाव रखने के कारण इस बालक का नामकरण विद्याधर हुआ। धार्मिक विचारों से ओत–प्रोत संवेदनशील सद्गृहस्थ मल्लप्पा जी नित्य प्रति जिनेन्द्र दर्शन एवं पूजन के पश्चात् की भोजनादि आवश्यक करते थे। साधु–सत्संगति करने से परिवार में संयम, अनुशासन, रीति–नीति की चर्या का ही परिपालन होता था।

आप माता–पिता की द्वितीय संतान होकर भी अद्वितीय संतान हैं। बड़े भाई श्री महावीरप्रसाद जी स्वस्थ परंपरा का निर्वाह करते हुए सात्त्विकता पूर्वक सद्गृहस्थमय जीवन–यापन कर रहे हैं। माता–पिता, दो छोटे भाई अनंतनाथ एवं शांतिनाथ एवं बहिनें शांता व सुवर्णा भी आपसे प्रेरणा पाकर घर–गृहस्थी के जंजाल से मुक्त होकर जीवन–कल्याण हेतु जैनेश्वरी दीक्षा लेकर आत्म साधनारत् हुए। धन्य है वह परिवार जिसके सात सदस्य सांसारिक प्रपंचों को छोड़कर मुक्ति मार्ग पर चल रहे हैं। इतिहास में ऐसी अनोखी घटना का अन्य उदाहरण बिरले ही देखने को मिलता है।

विद्याधर का बाल्यकाल घर तथा गाँव वालों के मान को जीतने वाली आश्चर्यकारी घटनाओं से युक्त रहा है। खेलकूद के स्थान पर स्वयं माता–पिता के साथ मंदिर जाना, धर्म–प्रवचन सुनना, शुद्ध सात्त्विक प्रयास करना, मुनि आज्ञा से संस्कृत के कठिन सूत्र एवं पदों को कंठस्थ करना आदि अनेक घटनाएँ मानों भविष्य में अध्यात्म–मार्ग पर चलने का संकेत दे रही थीं। आप पढ़ाई हो या गृहकार्य, सभी को अनुशासित और क्रमबद्ध तौर पर पूर्ण करते। बचपन में ही मुनि–चर्या को देखने, उसे स्वयं आचरित कर देखने की भावना से ही बाबड़ी में स्नान के समय पानी में तैरने के बहाने आसन और ध्यान लगाना, मंदिर में विराजित मूर्ति के दर्शन के समय उनमें छिपी विराट प्रतिभा को जानने का प्रयास करना, बिच्छू के काटने पर भी असीम दर्द को हँसते हुए पी जाना, परन्तु धार्मिक चर्या में अंतर नहीं आने देना, उनके संकल्पवान पथ पर आगे बढ़ने के संकेत थे। गाँव की पाठशाला में मातृभाषा कन्नड़ में अध्ययन प्रारम्भ कर समीपस्थ ग्राम बेड़कीहाल में हाई स्कूल की नवमीं कक्षा तक अध्ययन पूर्ण किया। चाहे गणित के सूत्र हों या भूगोल के नक्शे, पल भर में कड़ी मेहनत और लगन से उसे पूर्ण करते थे। उन्होंने शिक्षा को संस्कार और चारित्र की आधारशिला माना और गुरुकुली व्यवस्थानुसार शिक्षा को ग्रहण किया, तभी जो आज तक गुरु–शिष्य परंपरा के विकास में वे सत् शिक्षा दे रहे हैं।

वास्तविक शिक्षा तो ब्रह्मचारी अवस्था में तथा मुनि विद्यासागर की अवस्था में गुरुवर श्री ज्ञानसागर जी के सान्निध्य में पूरी हुई। प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, कन्नड़, मराठी, अंग्रेजी, हिन्दी तथा बंगला जैसी अनेक भाषाओं के ज्ञाता और व्याकरण, छन्दशास्त्र, न्याय, दर्शन, साहित्य और अध्यात्म के प्रकाण्ड विद्वान और आचार्य बने। आचार्य विद्यासागर मात्र दिवस काल में ही चलने वाले नग्नपाद पदयात्री हैं। राग–द्वेष, मोह आदि से दूर इन्द्रियजित्, नदी की तरह प्रवाहमान, पक्षियों की तरह स्वच्छन्द, निर्मल, स्वाधीन, और चट्टान की तरह अविचल रहते हैं। कविता की तरह

रम्य, उत्प्रेरक, उदात ज्ञेय और सुकोमल व्यक्तित्व के धनी आचार्य विद्यासागर भौतिक कोलाहलों से दूर, जगत मोहनी से असंपृक्त तपस्वी हैं।

आपके सुदर्शन व्यक्तित्व को संवेदनशीलता, कमलवत् उज्ज्वल एवं विशाल नेत्र, समुन्नत ललाट, सुदीर्घ कर्ण, अजान बाहु, सुडौल नासिका, तप्त स्वर्ण-सा गौर वर्ण, चुम्बकीय आभा से युक्त कपोल माधुर्य और दीप्ति संयुक्त मुख, लम्बी सुन्दर अंगुलियां, पाटलवर्ण की हथेलियां, सुगठित चरण आदि और अधिक मंडित कर देते हैं। वे ज्ञानी, मनोज्ञ तथा वाग्मी साधु हैं और प्रज्ञा प्रतिभा और तपस्या की जीवन्त मूर्ति हैं।

बाल्यकाल से ही खेलकूद में शतरंज खेलना, शिक्षाप्रद फिल्म देखना, मंदिर के प्रति आस्था रखना, तकली कातना, गिल्ली-डण्डा खेलना, महापुरुषों और शहीद पुरुषों के चित्र बनाना आदि रुचियां आप में विद्यमान थीं। नौ वर्ष की उम्र में ही **चारित्र चक्रवर्ती आचार्य प्रवर श्री शांतिसागर जी महाराज** के शेडवाल में दर्शन कर वैराग्य-भावना का उदय आपके हृदय में हो गया था। जो आगे चलकर ब्रह्मचर्य धारण कर प्रस्फुटित हुआ। 20 वर्ष की उम्र जो कि खाने-पीने, भोगोपभोग या सांसारिक आनंद प्राप्त करने की होती है तब आप साधु-सत्संगति की भावना को हृदय में धारण कर **आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज** के पास जयपुर (राजस्थान) पहुँचे। वहाँ अब ब्रह्मचारी विद्याधर उपसर्ग और परीषहों को जीतकर ज्ञान, तपस्या और सेवा का पिण्ड /प्रतीक बन कर जन-जन के मन का प्रेरणास्रोत गन गया था।

आप संसार की असारता, जीवन के रहस्य और साधना को महत्त्व को पहचान गये थे। तभी तो आप हष्ट-पुष्ट, गोरे-चिट्टे, लजीले, युवा विद्याधर की निष्ठा, दृढ़ता और अडिगता के सामने मोह, माया, श्रृंगार आदि टेक चुके थे। वैराग्य-भावना दृढ़वती हो चली। अतः पदयात्री और करपात्री बनने की भावना से आप **गुरुवर श्री ज्ञानसागर जी महाराज** के पास मदनगंज-किशनगढ़, अजमेर (राजस्थान) पहुँचे। गुरुवर के निकट सम्पर्क में रहकर लगभग 1 वर्ष तक कठोर साधना से परिपक्व होकर **मुनिवर श्री ज्ञानसागर जी महाराज** के द्वारा राजस्थान की ऐतिहासिक नगरी अजमेर में आषाढ़ शुक्ल-पंचमी, वि.सं. 2025, रविवार, 30 जून 1968 ईस्वी को लगभग 22 वर्ष की उम्र संयम का परिपालन हेतु आपने मात्र पिच्छी-कमण्डलु धारण कर संसार की समस्त बाह्य वस्तु का परित्याग कर दिया। परिग्रह से अपरिग्रह, असार से सार की ओर बढ़ने वाली यह यात्रा मानो आपने अंगारों पर चलकर/बढ़कर पूर्ण की। विषयोन्मुख वृत्ति, उद्दण्डता एवं उत्श्रृंखिलता उत्पन्न करने वाली इस युवावस्था में वैराग्य एवं तपस्या का ऐसा अनुपम उदाहरण मिलना कठिन ही है।

अब ब्रह्मचारी विद्याधर कहलाए **मुनि श्री विद्यासागर जी महाराज**। तब धरती ही बिछौना, आकाश ही उड़ौना और दिशाएं ही वस्त्र बन गए थे। दीक्षा के उपरांत गुरुवर श्री ज्ञानसागर जी महाराज की सेवा-सुश्रुषा करते हुए आपकी साधना उत्तरोत्तर विकसित होती गयी। तब से आज तक आपने अपने प्रति वज्र से कठोर परन्तु दूसरों के लिए नवनीत से मृदु बन कर शीत-ताप एवं वर्षा के गहन झंझावतों में भी आप साधना हेतु अरुक-अथक रूप से प्रवर्तमान ही हैं। श्रम और अनुशासन, विनय और संयम, तप और त्याग की अग्नि में तपी आपकी साधना गुरु-आज्ञा पालन, सबके प्रति समता की दृष्टि एवं समस्त जीव-कल्याण की भावना सतत् रहती है।

गुरुवर आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज की वृद्धावस्था एवं साइटिका से रुग्ण शरीर की सेवा में कड़कड़ाती शीत हो या तमतमाती धूप, या तो झुलसाती ग्रीष्म की तपन, मुनि विद्यासागर के हाथ गुरु सेवा में अहर्निश तत्पर रहते। आपकी गुरु सेवा अद्वितीय रही जो देश, समाज और मानव को दिशा बोध देने वाली थी। तभी तो डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य ने लिखा था कि करोड़ों रूपयों की संपत्ति पाने वाला लड़का भी जितना माँ-बाप की सेवा नहीं कर सकता, उतनी तत्परता एवं तन्मयता पूर्वक आपने अपने गुरुवर की सेवा की थी।

84 वर्षीय गुरु आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, भद्रोदय जैस 4 संस्कृत महाकाव्य, दयोदय चम्पू काव्य प्रभृति संस्कृत एवं राष्ट्र भाषा के विकास हेतु 24 से अधिक ग्रन्थों का सृजन कर माँ भारती के भण्डार को समृद्ध किया था। वृद्धावस्था की दशा में साधना की चरम् परिणति रूप सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण करने की आपने भावना व्यक्त की। किन्तु सल्लेखना के पहले आचार्य-पद का त्याग आवश्यक जानकर आचार्य पद मुनि विद्यासागर जी को देने की इच्छा जाहिर की परन्तु आप इस गुरुत्तर भार को धारण करने किसी भी हालत में जब तैयार नहीं हुए, तब आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने संबोधित कर कहा कि साधक को अंत समय में सभी पद का परित्याग आवश्यक माना गया है। इस समय शरीर की ऐसी अवस्था नहीं है कि मैं अन्यत्र जाकर सल्लेखना धारण कर सकूँ। तुम्हें आज गुरु-दक्षिणा अर्पण करनी होगी और उसी के प्रतिफल स्वरूप यह पद धारण करना होगा। गुरु-दक्षिणा की बात से मुनि विद्यासागर जी निरुत्तर हो गये। तब धन्य हुई नसीराबाद, अजमेर (राजस्थान) की वह धरती और घड़ी जब मगसिर कृष्ण-द्वितीया, वि.सं. - 2029, बुधवार, 22 नवम्बर 1972 ईस्वी को आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने अपने ही कर-कमलों से आचार्य पद पर मुनि श्री विद्यासागर महाराज को संस्कारित कर विराजमान किया। जैन समाज के वर्तमान काल के ज्ञान इतिहास की वह प्रथम घटना थी जब किसी जैनाचार्य ने समाधिमरण संकल्प लेने से पूर्व अपने ही शिष्य, जिसे क-ख-ग से पढ़ना सिखाया हो, उसे ही अपना आचार्य-पद अपने कर-कमलों से संस्कारित कर प्रदान किया। इतना ही नहीं मान-मर्दन के उन क्षणों को देखकर सहस्त्रों नेत्रों से आँसुओं की धार बह चली, जब आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने मुनि श्री विद्यासागर जी महाराज को आचार्य पद पर विराजमान किया एवं स्वयं आचार्य पद से नीचे उतरकर सामान्य मुनि के समान नीचे बैठकर नूतन आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के चरणों में

नमन कर बोले – ''हे आचार्य वर! नमोस्तु, यह शरीर रत्नत्रय साधना से शिथिल होता जा रहा है, इन्द्रियाँ अपना सम्यक् कार्य नहीं कर पा रही हैं। अतः मैं आपके श्री चरणों में विधिवत् सल्लेखना पूर्वक समाधिण धारण करना चाहता हूँ, कृपया मुझे अनुग्रहित करें।' आचार्य श्री विद्यासागर ने अपने गुरुवर की अपूर्व सेवा की।' पूर्ण निर्ममत्व भावपूर्वक आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज मरुभूमि में वि. सं. 2030 वर्ष की ज्येष्ठ मास की अमावस्या को प्रचण्ड ग्रीष्म की तपन की बीच में 4 दिनों के निर्जल उपवास पूर्वक नसीराबाद (राजस्थान) में ही शुक्रवार 1 जून 1973 ईस्वी को 10 बजकर 10 मिनिट पर इस नश्वर देह का त्याग कर समाधिमरण को प्राप्त हुए।

आचार्य श्री विद्यासागर जी बाल्यकाल से ही साधना को साधने तथा मन और इन्दियों को नियंत्रित करने का अभ्यास करते थे। अतः अनुकूल/प्रतिकूल परिस्थितियाँ होने पर भी पर्वत की कन्दराओं, एकान्त स्थलों, नदी-तीर या मंदिर-प्रांगणों में बैठकर साधना करते हुए भी आपने साधना में ऋद्धि-सिद्धि या तंत्र-मंत्र को स्थान नहीं दिया। वे विषय-वासना, भेदभाव जैसी बुराईयों से जूझते हुए प्रभु-आराधना, समता और संयम का परिपालन करने हेतु तन-मन से सदा तत्पर रहते हैं। आपकी भेद से अभेद या द्वैत से अद्वैत की ओर बढ़ने की यह यात्रा मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात आदि विभिन्न प्रांतों से हुई जिससे प्रभावित होकर आपके द्वारा अभी तक करीब 329 शिष्य श्रमण-साधना, तप, ध्यान, नियम, संयम एवं समता का पालन कर श्रमण संस्कृति/भारतीय संस्कृति की शोभा बढ़ाने तत्पर हुए और करीब 1 हजार से अधिक ब्रह्मचारी भाई-बहिने होंगे। इतनी कम उम्र और अल्प समय में इतना विशाल ब्रह्मचारी संघ तैयार कर लेना आपके व्यक्तित्व की असाधारण क्षमता का परिचायक है।

आचार्य विद्यासागर उच्चकोटि के साधक और संत होते हुए भी एक श्रेष्ठतम् साहित्यकार भी हैं। आपने साधना के जिन उच्चतम सोपानों को स्पर्श किया है, उनकी वजह से सामाजिक जगत् में एक अभूतपूर्व क्रान्ति आई है। लोगों ने जीवन में नियम, संयम की ओर अपना ध्यान आकृष्ट कर इस द्वन्द्वात्मक संसार से मुक्त होने की रूचि अनेक रूपों में जाहिर की। यद्यपि साधना और तपस्या व्यक्ति में श्रद्धा का भाव जागृत करती है, परन्तु उनकी रचनाशीतला व्यक्ति को उसकी अवधारणाओं और चिंतन की स्थितियों में अवगत कराती हैं। आचार्य विद्यासागर जी ने उत्कृष्ट साधना के साथ-साथ रचनाशीलता कें विविध सोपानों/आयामों को स्पर्श कर चिंतन, मनन और दर्शन की जो त्रिवेणी प्रवाहित की है वह निःसंदेह अद्वितीय है। आपने केवल गद्य नहीं वरन् पद्य की अनेक विधाओं खासकर अनुदित कला के द्वारा जिन उदात्त ग्रन्थों के पठन-पाठन की सुविधा और सरलता प्रदान की है, वह स्तुत्य ही नहीं, अनुकरणीय भी है। आपने काव्य के रूप में मुक्त छंद के माध्यम से भावों की जिन अतल गहराईयों में उतरकर शब्दों को जो अस्मिता प्रदान की है, उससे ऐसा लगता है कि शब्द की शक्ति कितनी प्रबल और प्रभावी होती/हो सकती है।

हिन्दी साहित्यावकाश की संतकाव्य परंपरा काफी सुदीर्घ रही है, जिस पर विस्तार से वर्णन मैंने अपने शोध-ग्रन्थ '**हिन्दी साहित्य की संत काव्य-परंपरा के परिप्रेक्ष्य में आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का अनुशीलन**' में किया है। वास्तव में समकालीन संत काव्य-परंपरा में आचार्य विद्यासागर का नाम बड़े ही आदर और श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है। बहु-आयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व होने के कारण आपके रचना-संसार में हमें जीवन के बहुविध रूपों में चित्र दिखाई देते हैं। आपने साहित्य के द्वारा जिस यथार्थ की अभिव्यक्ति अध्यात्म एवं दर्शन के माध्यम से की है, वह काफी बेजोड़ है। आपकी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना के स्वर सुनाई पड़ते हैं, जिन्हें अपनाकर व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी एकता के सूत्र में बंध सकते हैं। नारी की व्याख्या आपने समकालीन दृष्टि से नए संदर्भों में की है, जो वास्तव सामाजिक विकास की धुरी है साहित्यिक अवधारण के भी अनेक नूतन चित्र आपने अपने साहित्य में खींचे है, जो व्यक्ति के सोच और चिन्तन को सही दिशा प्रदान करते हैं। दार्शनिक विचारों की व्याख्या में आपने स्पष्ट किया है कि जीवन का सार तत्त्व निज-स्वरूप को पहचानने में है। आत्म-दर्शन के द्वारा वह विश्व-दर्शन की प्रक्रिया को समझ सकता है। आपने रस योजना का परिपाक समूचे काव्य में दर्शाकर सभी रसों की महत्ता बताते हुए भी शांत-रस को 'रसराज' सिद्ध किया है। प्रकृति की मनोरम छटा को भी संवेदनशील कवि भला कैसे अनदेखा कर सकता है ? अतः इसका बहुवर्णी रूप भी आपके काव्यों में दृष्टिगोचर होता है।

आचार्य विद्यासागर जी द्वारा रचित रचना-संसार में सर्वाधिक चर्चित और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में '**मूकमाटी**' महाकाव्य ने हिन्दी-साहित्य और हिन्दी सत्-साहित्य जगत् में आचार्य श्री को काव्य की आत्मा तक पहुँचाया है। मानव पीढ़ी को शुभ-संस्कारों से संस्कारित करना तथा सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षणिक क्षेत्र में प्रविष्ट हुई कुरीतियों को निर्मूल करना, इस कृति का परम ध्येय है। व्यक्ति के अंदर आचरण, आस्था, विश्वास, पुरुषार्थ और कर्त्तव्य की भावना तथा चारित्र और अनुशासन का दैनदिन प्रयोग करा देना इस कृति का पाथेय है। जन, भूमि और संस्कृति की महत्ता करते हुए आचार्य श्री ने इस महाकाव्य के द्वारा राष्ट्रीय अस्मिता को पुनर्जीवित किया है। सामाजिक न्याय और धार्मिक एकता/समता के लिए आपने एक आचरण-संहिता प्रस्तुत की है। परस्पर मिलन और सौहार्द के भावों को अभिव्यक्त करती हुई यह कृति कालजयी बन पड़ी है। मूकमाटी में नारी स्वातन्त्रय, लोकतन्त्र की स्थापना, आयुर्वेद की महत्ता, अहिंसा की गरिमा/महिमा, कला का लक्ष्य आदि के साथ अध्यात्म दर्शन, जीव-संसार, निमित्त-उपादान, पुरुषार्थ, प्रकृति का काव्यमय विश्लेषण आदि आचार्य की बहुज्ञता का परिचय करा देता है।

प्रत्येक प्राणी का जीवन अपने आप में आधी अधूरी कहानी है।

'नर्मदा का नरम कंकर' नामक काव्य रचना आचार्य विद्यासागर जी की साहित्य जगत् की अनौखी देन है। इसमें भाव और भाषा का स्वभाविक आवेग है। परंपरा से चले आ रहे सिद्धान्तों/विचारों को अपरिग्रही कवि ने अपने मौलिक अनुभव के द्वारा नया विस्तार देते हुए काव्य विचार-धारा को नई दिशा दी है। **'डूबो मत, लगाओ डुबकी'** नामक काव्य संग्रह में आचार्य श्री की निर्मल दृष्टि अहिंसक वृत्ति की तरह शांतरस से परिपूर्ण है। भक्ति और समर्पण की पराकाष्ठा को छूती हुई यह कृति अपने शिल्प में विशिष्ट है। **'तोता क्यों रोता?'** संग्रह की कविताएं आचार्य श्री के सिन्धु के विराट व्यक्तित्व/प्रतिभा का परिचय करती है। पाठको को रसास्वादन कराती हुई ये कविताएं अपनी वैचारिक महानता के लिए एक लम्बे समय तक अपनी छाप बनाए रखेंगी। **'दोहा दोहन'** काव्य संग्रह में सगुण और निर्गुण भक्ति के दर्शन होते हैं। गुरु-भक्ति, साधना, सत्-साहित्य पठन-पाठन का प्रेरक संदेश और समूची मानवता के विकास के लिए इस कृति में काव्यमय शंखनाद हुआ है। **'चेतना के गहराव में'** (सचित्र प्रतिनिधि काव्य संग्रह) कृति में सुशुप्त मानव-चेतना को जागृत करने का अमर संदेश है, साथ ही यह वर्तमान की विकृतियों को उजागर करने वाले दर्पण का कार्य करती है। प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कराती हुई ये कविताएँ चेहरे से आलेख दर्शाती हैं। **'विद्या-काव्य-भारती'** आचार्य श्री द्वारा सृजित **शारदा स्तुति** (संस्कृत एवं हिन्दी) **श्रमणशतक, निरंजनशतक, भावनाशतक, परीषहजयशतक, सुनीतिशतक** एवं **निजानुभवशतक** के संकलन के रूप काव्यसंग्रह हैं। इसमें अप्रतिम प्रतिभा के धनी, मुक्ति के पथ के पथिक संत कवि श्री विद्यासागर जी के वे जीवनानुभव हैं, जो सांसारिक असारता को सिद्ध करते हुए वैराग्य-भावना को प्रबल करते हैं तथा नीति, रीति, पुरुषार्थ, भक्ति, ज्ञान और योग की व्याख्या करते हैं। गुरुभक्ति, नामस्मरण, निर्गुण आराधना एवं लोककल्याण की भावना निहित होने से ये कविताएँ संत काव्य-परंपरा की बेजोड़ रचना सिद्ध होती है। **'पंचशति'** नामक काव्य-संग्रह में आचार्य श्री के द्वारा रचित पाँच संस्कृत शतक एवं उनके पद्यानुवादों का संकलन है, जिसमें श्रमणों के कर्त्तव्य, निरंजन शुद्धात्मतत्त्व की उपासना, अर्हत्पद प्राप्ति की भावनाएँ, साधना में बाधक व्यवधानों, परीषहों का समतापूर्वक सहन एवं जीवन कल्याणकारी नीतियों का दिग्दर्शन है। आपके द्वारा सृजित इन पाँच शतकों पर **डॉ. आशालता मलैया** के शोध प्रबन्ध **'संस्कृत शतक की परंपरा और आचार्य विद्यासागर के शतक'** के अनुसार ज्ञात इतिहास में मूक कवि के उपरांत संस्कृत शतक काव्य परंपरा में संत कवि आचार्य विद्यासागर जी ही एक मात्र रचनाकार हैं - जिन्होंने भी शतकों की रचना की है। इन्हीं पाँच शतकों का स्वयं पद्यानुवाद कर आप उनसे भी एक कदम आगे हो गये हैं। **'स्फुट काव्य-रचनाओं'** में आचार्य श्री ने गुरु महिमा की परंपरा को बनाए रखने कर शान्त रस को प्रमुखता प्रदान की है। साथ ही इन रचनाओं में मानव को जीवन में सादापन एवं उच्च-विचार युक्त होने की प्रेरणा दी है। आपने सार्थक, मौलिकता युक्त कविताओं को संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी कन्नड़, बंगला एवं अंग्रेजी भाषाओं में सृजन कर भारतीय वाङ्मय में गौरवमय वृद्धि की है।

मौलिक काव्यग्रंथों/संग्रहों के अलावा अनुदित काव्य-संग्रहों में आपका काव्यानुवाद-कर्म के प्रति साहित्यिक उमंग और उत्साह दिखाई देता है, जो सरस और व्यावहारिक होकर मानव-समाज को निश्चित ही दिशाबोध प्रदान करता है। स्वयं अहिन्दी भाषा-भाषी होते हुए भी आपके इस अनुवाद कर्म से सिर्फ राष्ट्रभाषा की समृद्धि नहीं हुई, बल्कि इनमें हिन्दी भाषा-भाषी जनता के प्रति आपका वात्सल्यमय अनुराग भी दिखाई देता है। जन्मतः कन्नड़ भाषी होते हुए भी आचार्य श्री विद्यासागर जी ने प्राकृत, अपभ्रंश, तथा संस्कृत भाषाओं के जिन उत्कृष्टमय काव्य ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद किया है, वे वास्तविक रूप से मूल की आत्मा का स्पर्श करते हुए भी कविकर्म निष्णात होने से मौलिक भी बन पड़े हैं। फिर भी अनुवाद में मूलग्रन्थ के प्रति सर्वत्र आदर की भावना विद्यमान है।

ईसा की प्रथम सदी के जैनाचार्य कुन्द-कुन्द की सम्पूर्ण साधनामय चेतना से प्रसूत ग्रंथराज **'समयसार'**, **'प्रवचनसार'**, **'नियमसार'**, **'पंचास्तिकाय'**, **'बारसाणुवेक्खा'**, **'अष्टपाहुड़'** आदि प्राकृत भाषा के इन ग्रंथों का पद्यानुवाद कर आपने अध्यात्म-पिपासुओं को अमृत उपलब्ध कराया है। जीवन के सारतत्त्व को पहचानने की दृष्टि इन अनुवादों में गुम्फित कर सरस और सरल अभिव्यक्ति कौशल से आन्तरिक बाह्य विकारों से मुक्त होकर स्वयं को कुन्दन-सा बनाने की प्रक्रिया संयोजित की है। संस्कृत साहित्य के उद्भट दार्शनिक **आचार्य समन्तभद्र स्वामी** के ग्रंथ **'स्वयंभू-स्तोत्र'** के हिन्दी पद्यानुवाद **'समन्तभद्र की भद्रता'** ग्रंथ में जहाँ उच्च कोटि की दार्शनिकता विद्यमान है, वहीं हृदय को छूती भक्ति-भवना के द्वारा तीर्थंकर के इतिहास, साधना और उसके पुरुषार्थों का त्यागमय जीवन निरूपित हुआ है। उनके ही अन्य ग्रंथ **'रत्नकरण्डक-श्रावकाचार'** को **'रयण-मंजूषा'** ग्रंथ में अनुदित करके मानवों के आचार-विचार, आहार-विहार तथा वृत्ति-प्रवृत्ति का उल्लेख करके व्यक्ति के संकल्प एवं कर्तव्यों का भी प्रतिपादन किया है। सुप्रसिद्ध वैय्याकरण एवं अध्यात्म विशारद **आचार्य पूज्यपाद** के ग्रंथ **'इष्टोपदेश'** की रुचिता के कारण आपने इस ग्रन्थ का दो बार पद्यानुवाद कर आध्यात्मिक भावों की अभिव्यञ्जना की है। अपनी गुणवत्ता के कारण यह कृति मानवों को सन्मार्ग दर्शाने में सक्षम है। इन्हीं आचार्य की अन्य कृति **'समाधितन्त्र'** का **'समाधि सुधा-शतक'** के नाम से अनुवाद कर सरल एवं सहज भाषा में योग एवं अध्यात्म-पिपासुओं के लिए समाधि-साधना की प्रेरणा प्रदान की है। **गुणभद्राचार्य** की रीति-नीति समन्वित कृति **'आत्मानुशासन'** का **'गुणोदय'** के नाम से ज्ञानोदय-छन्द में आपने जिस कौशल से अनुवाद किया है, उसमें आपकी

कवित्व प्रतिभा का चारु निदर्शन प्राप्त होता है। **आचार्य अमृतचन्द्र** के '**समयसार-कलश**' ग्रंथ को '**निजामृतपान**' नाम से अनुदित कर ग्रंथ में जहाँ आध्यात्मिक झलक दृष्टिगोचर होती है, वहीं काव्यगत पद-लालित्य और भावाभिव्यञ्जना भी दिखाई देती है। भगवान महावीर के सिद्धांतों के संकलन रूप '**समणसुत्त**' ग्रंथ को '**जैनगीता**' के नाम से अनुवाद कर शिक्षा, साधना, संयम, समन्वय जैसे धर्मसूत्र विश्व-मानस को मानव-उत्थान के निमित्त से प्रेरणामय कृति उपलब्ध कराई है। '**एकीभाव स्तोत्र**', '**कल्याणमंदिर स्तोत्र**', '**गोम्मटेशथुदि**', '**आप्तमीमांसा**', '**पात्रकेशरी-स्तोत्र**' तथा '**नंदीश्वर-भक्ति**' के पद्यानुवाद स्तुति और भक्ति काव्य की दृष्टि से भक्ति-साहित्य में विशिष्ट रखने में समर्थ कृतियां हैं। गागर में सागर समा देने वाली उक्ति को चरितार्थ कराने वाली आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्ति देव की कृति '**द्रव्य संग्रह**' का भी आत्महितार्थी जनों के लिए आपने दो बार अनुवाद किया है। प्राकृत, संस्कृत ग्रंथों के अतिरिक्त अपभ्रंश भाषा के योगीन्दुदेव द्वारा प्रणीत ग्रंथ '**योगसार**' को रोचक और भाव-प्रवण शैली में अनुदित करने वाली यह कृति अद्‌भुत भावों की प्रेरक है। इस प्रकार आपका यह समूचा साहित्य संत काव्य परंपरा के लिए अक्षुण्ण योगदान है।

आपके द्वारा अनुभूतियों का जो प्रस्फुटन हुआ है, उनमें तप, साधना, चिंतन, और मौन से तथा सतत् अध्ययन से प्राप्त अनुभवों का पुट मिला हुआ है। प्राचीन संस्कृति के दार्शनिक और आध्यात्मिक सूत्रों को सरल भाषा में व्याख्यायित करने वाले आपके प्रवचनों के अनेक संकलन जन-सामान्य को सहज सुलभ हुए है। इनमें **प्रवचन पारिजात, प्रवचन परिमेय, प्रवचन प्रदीप, प्रवचन पीयूष, प्रवचन पर्व, प्रवचनामृत, प्रवचन पंचामृत, पावन प्रवचन, गुरुवाणी, अकिंचित्कर, सर्वोदयसार, आत्मानुभूति की समयसार, आदर्श कौन?, डबडबाती आँखें, न धर्मो धार्मिकैर्विना, तेरा सो एक, जैन दर्शन का हृदय, जयन्ती से परे, कर विवेक से काम, चरण... आचरण की ओर, सत्य की छाँव में, व्यामोह की पराकाष्ठा, मूर्त से अमूर्त की ओर, मानसिक सफलता, मर हम... मरहम बनें, भक्त का उत्सर्ग, ब्रह्मचर्य चेतन का भोग, भोग से योग की ओर, धीवर की धी** आदि 50 से अधिक प्रवचन संग्रहों में जनसाधारण के चिंतन को सही दिशा देने तथा कायिक, मानसिक एवं वाचनिक उत्थान के दिशा सूत्र प्रदान किए हैं। इनमें गद्य का परिष्कृत रूप दृष्टिगोचर होता है तथा शब्दों पर आपके असाधारण अधिकार का परिचय भी दिखलाई देता है। भारतीय साहित्य की महिमा, भारतीय संस्कृति का गान तथा राष्ट्रीय भावना का उन्मेष इन प्रवचनों में विद्यमान है। ये प्रवचन प्राणीमात्र का दिशाबोध कराने के साथ ही हृदय में सृजनात्मक वातावरण भी तैयार करते हैं। इनमें निराशा और घुटन को दूर करते हुए आत्मिक बल और विश्वास पैदा किया गया है।

आपके मौलिक काव्य चिंतन की धुरी राष्ट्रभाषा में जहाँ श्रमण शतक, निरंजन शतक, भावना शतक, परीषहजय शतक (**ज्ञानोदय**), सुनीतिशतक, निजानुभव शतक में प्राप्त होती है। वहीं मुक्तक शतक सर्वोदय शतक, पूर्णोदय शतक और सूर्योदय शतक में साहित्य एवं करीब 600-700 से अधिक हाईको कविताओं का भाव पक्ष जितना उदात्त है, कला पक्ष भी उतना ही अनूठा है। डॉ. नेमीचन्द जैन के कथनानुसार आप प्रयोग धर्मी कवि एवं साहित्य मनीष हैं, अतः भाषा और शैली दोनों के ही तलों पर आपने अपूर्व प्रयोग किए हैं, जिसके कारण आपकी कृतियाँ कालजयी हैं, जो प्रखर-मनीषा की परिचायक भी हैं। वर्ण की विलोम शक्ति का आपको गहन बोध है। वर्ण विनोद में से वर्ण की आवृत्त शक्तियों को अनावृत करने की जो क्षमता विद्यासागर मुनि में है, वह अन्यों में नहीं मिलती। वर्ण क्रीड़ा में से होकर अर्थ की गहराईयों में अवगाहना कर वहाँ से पाठकों को अमोघ आध्यात्मिक रसास्वाद विद्यासागर जैसे ही महान रसवेत्ता के लिए संभव है। विलोम शक्ति के वे विशेषज्ञ ही है। कुल मिलाकर उन्हें भाषा तक कभी नहीं जाना पड़ा भाषा ही उन तक आयी है। असल में क्षर में से अक्षर के तलातल ढूँढ निकालने का नाम ही विद्यासागर है और उनकी साहित्यिक कृतियाँ मात्र कृतियाँ ही नहीं है, अपितु अकृत्रिम चैत्यालय हैं।

इस तरह सारस्वत प्रयास से निर्मित आपका सम्पूर्ण कृतित्त्व मानवता के हित प्रदर्शक होने के कारण भारतीय साहित्य-जगत् में लम्बे समय तक सराहा जायेगा। ऐसे महान साधक, महावीर के लघुनंदन, जिनके चरणों में वंदन, उनके 50वें मुनि दीक्षा वर्ष 2017-18 के इस संयमोत्सव वर्ष पर यह अनुपम संघ परिचय की कृति प्रस्तुत है। ऐसे संकलनकर्ता साधक मुनि श्री जी के चरणों में नमन करके कलम को विराम और पुनः मेरी भक्ति वीणा के तार, मेरी श्रद्धा के झंकार, गुरुवर के चरणों में प्रणाम कर लेता हूँ विराम।

❋❋❋❋

वर्ण का आशय न रंग है न अंग से वरन चाल-चलन ढंग से है।